गायत्री मंत्र के **या** अक्षर की व्याख्या

संतान के प्रति कर्त्तव्य

● श्रीराम शर्मा आचार्य

बुद्धि की देवी गायत्री के प्रत्येक उपासक के लिए स्वाध्याय भी उतना ही आवश्यक धर्म कृत्य है, जितना जप, ध्यान, पाठ आदि। बिना स्वाध्याय के, बिना ज्ञान की उपासना के बुद्धि पवित्र नहीं हो सकती, मानसिक मलीनता दूर नहीं हो सकती और इस सफाई के बिना माता का सच्चा प्रकाश कोई उपासक अपने अंतःकरण में अनुभव नहीं कर सकता। जिसे स्वाध्याय से प्रेम नहीं, उसे गायत्री उपासना से प्रेम है, यह नहीं माना जा सकता। बुद्धि की देवी गायत्री का सच्चा भोजन स्वाध्याय ही है। ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं। इसलिए गायत्री उपासना के साथ ज्ञान की उपासना भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

□ प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
□ लेखक : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
□ पुनरावृत्ति : २०१३
□ मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

सौजन्य से :

अनुदान राशि से 40 पुस्तकों के पूरे सेट का मूल्य : 120/-

सन्तान के प्रति हमारा कर्तव्य

गायत्री मंत्र का चौबीसवाँ अक्षर 'या' हमको संतान के प्रति हमारी जिम्मेदारी का ज्ञान कराता है ।

या यात्स्वोत्तर दायित्वं निवहन् जीवने पिता ।
कुपितापि तथा पापः कुपुत्रोऽस्ति यथा ततः ।।

अर्थात्–"पिता संतान के प्रति अपने उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार से निवाहे । कुपिता भी वैसा ही पापी होता है जैसा कि कुपुत्र ।"

जो अधिक समझदार, बुद्धिमान होता है उसका उत्तरदायित्व भी अधिक होता है । कर्तव्य पालन में किसी प्रकार की ढील, उपेक्षा एवं असावधानी करना भी अन्य बुराइयों के समान ही दोष की बात है । इसका परिणाम बड़ा घातक होता है । अक्सर पुत्र, शिष्य, स्त्री, सेवक आदि के बिगड़ जाने, बुरे होने, अवज्ञाकारी एवं अनुशासन हीन होने की बहुत शिकायतें सुनी जाती हैं । इन बुराइयों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पिता, गुरु, पति, शासक और संरक्षकों पर भी होता है । व्यवस्था में शिथिलता करने, बुरे मार्ग पर चलने का अवसर देने, नियंत्रण में सावधानी न रखने से अनेक निर्दोष व्यक्ति भी बिगड़ जाते हैं ।

मनचाही सन्तान

वास्तव में परिवार और सन्तान का उत्तरदायित्व साधारणा बात नहीं है । जब आप परिवार में एक बच्चे को जन्म देकर एक नये नागरिक की वृद्धि करते हैं, तब आप अनेक प्रकार की सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक जिम्मेदारियों की वृद्धि करते हैं । आपके परिवार में आने वाला नया बालक उत्तरदायित्व का एक पुलन्दा है, जिसे वहन करने के लिए जन्म से पूर्व ही आपको गम्भीरता से विचार कर लेना चाहिए । क्या आपको वास्तव में पुत्र या पुत्री की आवश्यकता है ? क्या आप हृदय के गहन तल से पुत्र–पुत्री की कामना करते हैं ? क्या आपकी आय इतनी है कि आने वाले बच्चे का व्यय, उसके जन्म, पालन, शिक्षा आदि के खर्चे आप सहन कर सकें ? कुछ माता–पिता यों ही भावुकता के वश आकर या वासना के ताण्डव में उन्मत्त होकर या कोरे मनोरंजन मात्र के क्षुद्र क्षणिक आवेशों मे फँसकर सन्तान को जन्म देते हैं, भविष्य के विषय में कुछ भी पूर्व चिन्तन नहीं करते ।

कहीं–कहीं मनचाही सन्तान उत्पन्न हो जाती है । ऐसे अविवेकी असंयमी माता–पिता समाज के भार को बढ़ाते हैं ।

सन्तान उत्पत्ति हँसी–खेल नहीं है, उत्तरदायित्व का गुरुतर भार है । एक सन्तान के उत्पन्न होने के पश्चात उससे जीवन पर्यन्त मुक्ति नहीं । केवल मृत्यु ही आपके उस भार को हलका करेगी । किन्तु ऐसा करने में आपको अनेक भावना जन्य, मानसिक क्लेशों का सामना करना पड़ेगा । प्रत्येक बच्चे से घरेलू व्यय उतना बढ़ेगा कि आपको अपना पेट काटकर, अपने आप भूखा, प्यासा, उघाड़ा रहकर उसकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा । आपका जेब खर्च कम हो जायगा और मनोरंजनों में भी कमी हो जायगी । आपके पाँवों में ऐसी बेड़ियाँ पड़ेंगी, जो मजबूती से आपको संसार के माया–मोह से बाँधेंगी । लड़के की शिक्षा, पालन–पोषण, रोजगार इत्यादि का प्रबन्ध न होने तक आप उसी से बँधे रहेंगे । यदि पुत्री है तो उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, देखभाल और विवाह इत्यादि की चिन्ता आपको घुला डालेगी । माता के लिए सन्तान का भार बहुत गम्भीर अर्थ रखता है । प्रत्येक सन्तान को जन्म देने पर उसके स्वास्थ्य तथा आयु का आठवाँ भाग क्षीण हो जाता है । आठ सन्तानों के पश्चात् साधारण रूप में माता की मृत्यु समझना चाहिए । एक बार बालक के जन्म के पश्चात् उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य वैसा नहीं पनपता, वह अनेक गुप्त रोगों की शिकार हो जाती है । मानसिक दृष्टि से चिन्ता, उत्तरदायित्व, आन्तरिक आह्लाद का ह्रास, क्रोध, घृणा, स्वार्थ, कुढ़न की अभिवृद्धि होती है । अन्दर ही अन्दर माता–पिता अपने बोझ का अनुभव करते हैं और संतप्त रहते हैं । ज्यों–ज्यों सन्तान बड़ी होती है और माता–पिता की जवानी समाप्त होती है, त्यों–त्यों सन्तान रूपी बोझ खलता है । यदि संयोगवश सन्तान आवारा या दुष्ट प्रवृत्ति की हुई, तो मृत्यु पर्यन्त मनःशान्ति प्राप्त नहीं होती । अतः सन्तान को जन्म देने से पूर्व विवेक बुद्धि से पर्याप्त विचार कर लीजिए इस सम्बन्ध में एक जगत् प्रसिद्ध महापुरुष का निम्नलिखित स्पष्ट कथन विचारणीय है–

"ईश्वर ने जो सन्तान तुमको दी है, उनसे प्यार करो, पर वह तुम्हारा प्रेम सच्चा और गहरा होना चाहिए । वह अनुचित लाड़ या झूँठा स्नेह न हो जो तुम्हारी स्वार्थपरता और मूर्खता से उत्पन्न होता है और उनके जीवन को नष्ट करता है । तुम इस बात को न भूलो कि तुम्हारी इन वर्तमान संतानों के

रूप में आने वाली प्रजायें तुम्हारी अधीनता में हैं, इसलिए इनके प्रति अपने उस कर्तव्य का, जो ईश्वर ने तुमको सौंपा है और जिसके तुम सबसे अधिक उत्तरदाता हो, पालन करो । तुम अपनी संतानों को केवल जीवन के सुख और इच्छा पूर्ति की शिक्षा न दो वरन् उनको धार्मिक जीवन, सदाचार और कर्तव्य पालन की भी शिक्षा दो, इस स्वार्थमय समय में ऐसे माता-पिता विशेषतया धनवानों में बिरले ही मिलेंगे, जो सन्तान की शिक्षा के भार को, जो उनके ऊपर है, ठीक-ठीक परिमाण में तौल सकें ।"

"तुम जैसे हो वैसी ही तुम्हारी सन्तानें भी होंगी, वे उतनी ही अच्छी या बुरी होंगी, जितने तुम स्वयं अच्छे या बुरे हो । जब कि तुम आप अपने भाइयों के प्रति दयालु और उदार नहीं हो, तो उनसे क्या आशा कर सकते हो कि वे उनके प्रति दया और उदारता दिखलायेंगे । वे किस प्रकार अपनी विषय वासना और बुरी इच्छाओं को रोक सकेंगे, जब कि रात-दिन तुमको विषय लोलुप और कामुक देखते हैं । वे किस प्रकार अपनी नैसर्गिक पवित्रता को स्थिर रख सकेंगे, जब कि तुम अपने अश्लील और निर्लज्ज व्यवहारों से उनकी लज्जा को तोड़ने में संकोच नहीं करते । तुम कठोर साँचे हो जिनमें उनकी मुलायम प्रकृति ढाली जाती है । निदान यह तुम्हीं पर निर्भर है कि तुम्हारी संतान मनुष्य हों या मनुष्याकृत वाले पशु ।"

सन्तान माता-पिता के अनुरूप ही होती हैं

उपर्युक्त उद्धरण से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि सन्तान के भले-बुरे होने की जिम्मेदारी किस हद तक माता-पिता के ऊपर है । यों तो कोई-कोई नीतिकार कह गये हैं-

'होय भले कैं सुत बुरो, भलो बुरे कैं होय ।
दीपक से काजल प्रकट, कमल कीच से होय ।।

पर यह दोहा केवल कवि की कलम की करामात ही है । हमारा कहने का आशय यह नहीं कि ऐसा कभी नहीं होता, पर ऐसा जब कभी होता है, तो उसका कारण प्रायः माता-पिता की कोई असावधानी ही होती है ।

बालक के शरीर की उत्पत्ति माता-पिता के शरीर से होती है । जैसी खरी-खोटी धातु गलाई जायगी वैसा ही बर्तन बनेगा । जैसे ईंट-चूने का प्रयोग होगा वैसा ही मकान बनेगा । यदि माता-पिता के शरीर स्थूल या सूक्ष्म रोगों से ग्रसित हैं तो सन्तान पर भी उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा ।

शरीर शास्त्र के ज्ञाता यह भली-भाँति जानते हैं कि कितने ही रोग ऐसे हैं जो पीढ़ियों तक चलते हैं । कुष्ट, उपदंश, मृगी, उन्माद, अर्श, क्षय आदि के बीजाणु माता-पिता के शरीर में विद्यमान हों तो बहुधा उनका प्रभाव सन्तान में भी देखा जाता है । माता-पिता के रंग-रूप की छाया भी बालकों पर रहती है । गोरे या काले माता-पिता की सन्तान प्रायः अपने माता-पिता के रंग की ही होती है । माँ-बाप के शरीर की कृशता या स्थूलता भी बालकों पर प्रकट होती देखी गई है ।

वेष, भाषा, संस्कृति, रुचि, आहार, विहार, आचार, विचार आदि बातों में भी बच्चे अपने माँ-बाप का अनुसरण करते हैं । छोटा बालक माँ के उदर में ही उन बातों के बहुत कुछ संस्कार ग्रहण कर लेता है और जन्म धारण के पश्चात् उन बातों को सहज ही अपनाने लगता है । इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बालक सत्तर प्रतिशत अपने जन्मदाता शरीरों की प्रतिमूर्ति होता है । वंश, जातियाँ, नस्ल, वर्ण आदि विभागों के मूल में यही तत्व काम करता है । यदि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर न आता तो इस प्रकार का वर्गीकरण दृष्टिगोचर न होता और नीग्रो, चीनी, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, यूरोपियन आदि जातियों में जो आकृति, रंग, स्वभाव आदि में जो अन्तर दिखाई पड़ता है, वह भी न दीखता ।

पिता-माता के शरीर स्वभाव और प्रवृत्तियों का अनुसरण प्रायः अन्य सभी जीव जन्तुओं की भाँति मनुष्य जाति में भी होता है । साथ ही मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का उत्तराधिकार उसके आत्मजों को मिलता है । हम माता-पिता के धन-सम्पत्ति एवं यश-अपयश के ही नहीं उनकी आन्तरिक विशेषताओं, आध्यात्मिक संपदाओं के भी उत्तराधिकारी होते हैं । उत्तम ब्राह्मण कुल में बहुधा सात्विक मनोवृत्ति के बालक जन्मते हैं और बधिक, म्लेच्छ एवं कसाइयों के घरों में वैसी ही प्रकृति के बच्चे जन्मते और बनते हैं ।

यों हर जीव अपने पूर्व जन्मों के स्वतंत्र संस्कार और प्रारब्ध साथ लाता है । इसलिए कभी-कभी सन्तान माता-पिता से भिन्न स्वभाव की होती देखी गई है, पर ऐसा होता अपवाद स्वरूप ही है । अधिकांश बच्चे अपने जन्मदाताओं के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप होते हैं । भारतीय वर्ण व्यवस्था में इस तत्व को प्रमुख आधार मानकर जन्म एवं वंश को प्रधानता दी गई

है । एक शरीर त्याग कर जीव जब दूसरे शरीर में जाने को होता है, तो वह अपनी संचित रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल स्थान को खोजता है । रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास के डिब्बे में यात्रा करने वाले यात्री विशेष मुसाफिर खाने में चले जाते हैं तीसरे दर्जे में यात्रा करने वाले उसी दर्जे के निमित्त बने हुए मुसाफिरखाने में जा बैठते हैं । वैसे ही जीव भी अगले जन्म के लिए अपने उपर्युक्त वंश में जा पहुँचता है । आकाश में उड़ते हुए पक्षी तथा कीट–पतंग अपनी रुचिकर वस्तुओं को खोजते फिरते हैं और जब अनुकूल–अभीष्ट वस्तु मिल जाती है, तब उसे प्राप्त करने के लिए नीचे की ओर आते हैं । गिद्ध मृत मांस को, कौए विष्टा को, भौंरा फूलों को, बाज चिड़ियों को खोजते फिरते हैं । जहाँ उनकी मनचाही वस्तु दिखाई देती है वहीं उतर पड़ते हैं । जीवों को प्रारब्ध तो अपने कर्मानुसार ही भुगतने पड़ते हैं, जो हर कुल और वंश में भुगते जाने संभव हैं, पर जन्म लेने के लिए वे अपनी पूर्व संचित रुचि के अनुकूल स्थिति ही खोजते हैं और दयामय प्रभु उन्हें इच्छित वातावरण में ही जन्मने का अवसर प्रदान कर देते हैं ।

माता–पिता की जैसी आध्यात्मिक भूमिका होती है, उसी के अनुरूप प्रारब्ध संस्कार वाले जीव उनके शरीर में प्रवेश करके उस वातावरण में जन्म धारण करते हैं । इसलिए यदि अपने घर में उत्तम सन्तान को जन्म देना है तो उसके लिए अपने आपको उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । जो लोग स्वयं पतित दशा में हैं, जिनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्थिति गिरी हुई है, उनकी सन्तान भी दीन–हीन ही रहेगी ।

सन्तानोत्पादन एक महान् उत्तरदायित्व है, जिसे उठाने के लिए बहुत समय पूर्व तैयारी करने की आवश्यकता है । किसी महत्वपूर्ण कार्य को सफलता पूर्वक पूर्ण करने के लिए जिस प्रकार उसके लिए सभी आवश्यक उपकरण इकट्ठे करने पड़ते हैं उसी प्रकार उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए जहाँ बालक की उत्तम शिक्षा–दीक्षा की आवश्यकता है, वहाँ उसके जन्म से पूर्व वे परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेनी भी आवश्यक हैं, जिनमें कोई उत्तम जीव, स्थान ग्रहण कर सके । उत्तम फसल प्राप्त करने के लिए किसान पौधों को सींचने और रखवाली की व्यवस्था करता है किन्तु यदि भूमि की अच्छी जुताई, परिपुष्ट बीज आदि की पूर्ण तैयारी ठीक प्रकार न हो तो सिंचाई और रखवाली की अच्छी व्यवस्था भी निष्फल चली जाती है

और किसान वैसी फसल उत्पन्न न कर सकेगा, जैसी कि वह चाहता है ।

कहा गया है कि सन्तान के कारण उसके पितरों को नरकगामी होना पड़ता है । कारण स्पष्ट है कि सन्तान को समुचित पूर्ण तैयारी के बिना ही उत्पन्न कर डालना एक भारी पाप है, जिसका दण्ड उसे पारलौकिक जीवन में तो मिलता ही है, लौकिक जीवन में भी उसकी कम दुर्गति नहीं होती । सन्तान की हीनता और नीचता से जो अनुचित कार्य होते हैं, उनसे पिता-माता की भी निन्दा होती है, क्योंकि वे सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने का अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सफल न हो सके । जो व्यक्ति अनधिकार चेष्टा करते हैं वे निन्दा के पात्र होते हैं । मनुष्योचित गुण जिनमें न हों, वह तो पशु ही हैं । पशुओं की भाँति केवल काम प्रेरणा से गर्भाधान में प्रवृत्त हो जाना और एक असंस्कृत जीव उत्पन्न कर देना पशु प्रवृत्ति ही है । यह मनुष्यता के प्रति, देश और जाति के प्रति एक अपराध भी है क्योंकि उनके पाशविक उद्देश्य के फलस्वरूप जो बालक उपजते हैं वे संसार के लिए अहित कर और अवांछनीय कार्य करते हैं । उनसे पृथ्वी का बोझ बढ़ता और संसार में अनीति तथा अशान्ति की वृद्धि होती है । इस गड़बड़ी की जिम्मेदारी उन माता-पिता पर है जो सन्तानोत्पत्ति का महान् उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करने से पूर्व उसकी भावी सम्भावनाओं पर विचार नहीं करते । ऐसी गैर जिम्मेदारी किसी व्यक्ति की लौकिक और पारलौकिक दुर्गति का ही कारण हो सकती है । ऐसे पिता नरकगामी नहीं होंगे तो क्या स्वर्गगामी होंगे ?

आज हमारे परिवार क्लेश और कलह से भर रहे हैं । उनमें प्रधान कारण असंस्कृत सन्तान हैं । घर के मुखिया एवं बड़े-बूढ़े छोटों की उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, चोरी, स्वार्थपरता, अशिष्टता से परेशान देखे जाते हैं । स्कूलों में अध्यापक सिर धुनते हैं, घर में अभिभावकों की आँतें-पीते जलती हैं । क्या लड़कियाँ, क्या लड़के सभी की चाल बेढंगी है । जब तक बचपन रहता है, तब तक उद्दण्डता करते हैं, कुछ समझदार होते हैं तो वासना और विलासिता की ओर झुक पड़ते हैं । बड़े होने पर उनकी कार्य पद्धति स्वार्थपरता से ओत-प्रोत हो जाती है । माता-पिता के लिए, संस्कृति के लिए, मनुष्यता के लिए वे अभिशाप ही सिद्ध होते हैं । हमारी नई पीढ़ियाँ इसी मार्ग का अनुसरण कर रही हैं । कोई विरले ही भाग्यशाली घर ऐसे होंगे जिनमें कर्तव्यपालन, शिष्टाचार, सद्भावना, सेवा,

त्याग, आत्मीयता एवं सदाशयता का अमृत बरसता हो । प्राचीनकाल में जो स्थिति घर–घर में थी वह आज कहीं दिखाई नहीं पड़ती, जो बातें पूर्व काल में कहीं देखी तक नहीं जाती थीं, वे आज घर–घर में मौजूद हैं । परिस्थितियों में इतना भारी परिवर्तन हो जाने के कारणों में सबसे बड़ा कारण माता–पिता की गैर जिम्मेदारी है, जो सन्तानोत्पत्ति के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त किए बिना इस भारी उत्तरदायित्व को कन्धे पर उठाने का दुस्साहस कर बैठते हैं । इन्हीं भूलों के कारण आज हमारा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विषाक्त बनता चला जा रहा है ।

यह सभी जानते हैं कि माता–पिता को अपने शरीर का पूर्ण विकास कर लेने तक, युवावस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । वासनापूर्ति के लिए नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिए काम सेवन करना चाहिए । ग्रहस्थ जीवन में भी पूर्ण संयम का पालन करने से बलवान, निरोग, बुद्धिमान और दीर्घजीवी संतान पैदा होती है । परन्तु इस तथ्य को बहुत कम लोग जानते हैं कि माता–पिता के शुद्धाचरण का बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ता है ? बालक केवल हाड़–मांस का ही नहीं होता, उसमें अन्तःचेतना का भी प्रमुख भाग रहता है । यदि माता–पिता के मन में, मस्तिष्क में, अन्तःकरण में कुविचार, स्वार्थपरता, वासना, असंयम, अनुदारता की वृत्तियाँ भरी हुई हैं तो वह उसी रूप में या थोड़े–बहुत परिवर्तित रूप में बालक में भी प्रकट होंगी । जैसे कोढ़ी या क्षयग्रस्त स्त्री–पुरुषों के रजवीर्य से दूषित रक्त वाले बालक जन्मते हैं वैसे ही बौद्धिक एवं नैतिक दृष्टि से रोगी लोगों की सन्तान भी पतित मनोभूमि की होती है ।

व्यभिचार जन्य जारज और वर्णशंकर सन्तान आमतौर से दुष्ट, दुराचारी एवं कुसंस्कारों से भरी हुई होती है क्योंकि उनके माता–पिता में पाप वृत्तियों की प्रधानता रहती है । जिन स्त्री–पुरुषों में परस्पर द्वेष, घृणा एवं मनोमालिन्य रहता है, उनके बच्चे प्रायः कुरूप और बुद्धिहीन होते हैं । डाक्टर फाउलर ने इस सम्बन्ध में बहुत खोजबीन की है । उन्होंने बहुत से बालकों की विशेषताओं का कारण उनके माता–पिता की मानसिक स्थिति को पाया है, शारीरिक दृष्टि से गिरे हुए माता–पिता के द्वारा उन्होंने उत्तम स्वास्थ्य के बालकों की उत्पत्ति का कारण उन्होंने दम्पत्ति का पारस्परिक सच्चा प्रेम पाया । इसी प्रकार उन्हें इस बात के भी प्रमाण मिले कि उद्विग्न

मनोदशा के दम्पत्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अच्छी स्थिति के होने पर भी बीमार और बुद्धिहीन संतान के जनक बने ।

डाक्टर जान केवन ने मनोविज्ञान की दृष्टि से इस सम्बन्ध में विशेष शोध की है और वे अनेक उदाहरणों एवं प्रमाणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि माता–पिता सद्गुणी, अच्छे स्वभाव के, कर्तव्यनिष्ठ, नीतिवान और धर्मात्मा हैं तो उनकी अपूर्णताओं और विकास की अन्य सुविधाओं के अभाव में भी बालक उत्तम शरीर और मन वाले उत्पन्न होते हैं । कभी–कभी जो प्रतिकूल अपवाद देखे जाते हैं उनमें भी मानसिक प्रतिकूलताओं को ही उनने निमित्त कारण पाया है । धर्मात्मा लोग भी जब किसी अनीति से पीड़ित होते हैं और उनके मन में पीड़ा, उद्वेग एवं प्रतिहिंसा की अग्नि जलती है तो उनके बुरे संस्कारों से बालक की मनोभूमि भर जाती है । इसी प्रकार कभी–कभी बुरे आदमी भी परिस्थिति वश उच्च विचारधारा से भरे होते हैं, तो उसकी उत्तम छाया भी बच्चों पर आती है । पुलस्त ऋषि के घर रावण का, हिरण्यकश्यप के घर प्रहलाद का जन्म होने जैसी घटनाओं में उनने माता–पिता की मनोदशा के परिवर्तनों को ही कारण माना है ।

बालकों का चरित्र निर्माण

प्रत्येक बालक में चाहे वह बालक हो या प्रौढ़ भली–बुरी सब प्रकार की प्रवृत्तियों के बीज सूक्ष्म रूप में मौजूद होते हैं । इसलिए मनुष्य जैसी संगति जैसी परिस्थिति में रहेगा उसी प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा, वे ही विकसित होंगी और अन्य प्रकार की कुण्ठित हो जायेंगी । बालक में भी काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि प्रवृत्तियों के साथ–साथ सहानुभूति, प्रेम और दया की प्रवृत्तियाँ गुप्त रूप से विद्यमान रहती हैं । इनको वह अपने माता–पिता से, परम्परा से प्राप्त करता है और उसका चरित्र इसी पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है । उसकी इन प्रवृत्तियों का विकास उसके सहवास के अनुसार हुआ करता है । कामी, क्रोधी तथा द्रोही मनुष्यों के सहवास में आने से वह स्वयं भी वैसा ही बन जाता है क्योंकि ऐसे लोगों के मध्य में रहने से उसकी काम, क्रोध तथा ईर्ष्या की प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं । किन्तु इसके विपरीत यदि उसका सहवास ऐसे मनुष्यों से हो जो दयालु तथा सहानुभूति पूर्ण हों तो उसकी दया, प्रेम और सहानुभूति की प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं । बालक, संपर्क में आने वाले पुरुषों के भावों, विचारों

तथा कार्यों का अनुकरण किया करता है और जैसे आदर्श उसके समक्ष उपस्थित होते हैं । उनके अनुसार उसकी प्रवृत्तियों का विकास हो जाता है । केवल उन प्रवृत्तियों पर सहवास का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता जो बालकों में जन्म से ही बहुत प्रबल होती हैं । अतः सबसे आवश्यक बात यह है कि बालक के माता–पिता का चरित्र निर्दोष होना चाहिए ।

यदि माता–पिता का चरित्र निर्दोष न हो तो उनकी संतान के सच्चरित्र होने की बहुत कम सम्भावना होती है, क्योंकि जन्म सिद्ध प्रवृत्तियों को दूर करना अत्यन्त कठिन कार्य है । इसीलिए यह उक्ति प्रचलित है कि "बालक की नैतिक शिक्षा उसके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है ।" इस हेतु अपनी सन्तान को सच्चरित्र बनाने की अभिलाषा रखने वाले माता–पिता का यह कर्तव्य है कि वे बालक के जन्म से पूर्व ही उन गुणों को स्वयं प्राप्त करने का प्रयत्न करें, जिन गुणों का वे अपनी सन्तान में होना आवश्यक समझते हैं । इस ओर ध्यान देने से चरित्र गठन सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ स्वयमेव ही हल हो जाती हैं ।

जिन बालकों के माता–पिता ने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया, उनकी प्रवृत्तियों का भी अच्छी परिस्थिति की सहायता से बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है । भले साथियों के सहवास से बुरी प्रवृत्तियों का दमन तथा अच्छी प्रवृत्तियों को उत्तेजित किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में बालकों के माता–पिता तथा अध्यापकों का यह कर्तव्य है कि वे जिन नियमों का बालकों से पालन कराना चाहते हैं उनका स्वयं पालन करें । घर पर तथा पाठशाला में प्रत्येक कार्य नियत समय पर किया जावे, प्रत्येक वस्तु के लिए निश्चित स्थान हो, प्रत्येक कार्य को करने में स्वच्छता तथा सुन्दरता की ओर ध्यान दिया जाय, प्रत्येक व्यवहार में शिष्टता तथा कर्तव्य परायणता विद्यमान हो और भिन्न–भिन्न नियमों का यथोचित रीति से पालन किया जावे । इस प्रकार की आदर्श परिस्थिति में उपर्युक्त बातें सरलता से ही बालकों के स्वभाव का अंग बन जाती हैं और वे अनायास ही सच्चरित्र बन जाते हैं जो कि मनुष्यता का प्रधान लक्षण है ।

चरित्र निर्माण के लिए तीसरी आवश्यक बात "आचारिक शिक्षा" है । यदि परम्परा तथा बालक का सहवास उत्तम हो तो शिक्षा सोने में सुगन्ध का काम करती है । परम्परा तथा सहवास द्वारा प्राप्त कुप्रवृत्तियों का सुधार

कुछ अंशों में आचारिक शिक्षा द्वारा हो सकता है । परन्तु इस प्रकार की शिक्षा देने में निम्नलिखित तीन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) कुछ सीमा के अन्दर बालकों को थोड़ी बहुत स्वतंत्रता अवश्यमेव देनी चाहिए । उनकी प्रवृत्तियों का व्यर्थ दमन करने तथा हर समय उनको सख्त कैद में रखने से बहुत हानि की आशंका रहती है । इस प्रकार बालक डरपोक बन जाते हैं और उनमें आत्म विश्वास, स्वावलम्बन, दृढ़ निश्चय उद्योगशीलता तथा मौलिकता आदि गुणों का विकास नहीं होने पाता । अतः बालकों को स्वतंत्र रीति से कार्य करने का अधिक से अधिक अवसर देना चाहिए जिससे कि उनके व्यक्तित्व और चरित्र का उचित रूप से विकास हो सके ।

(२) बालकों में आत्म संयम का भाव उत्पन्न किया जावे तथा उनकी बुरी प्रवृत्तियों को रोका जावे । यह विशेष कर उन बालकों के लिए बहुत आवश्यक है जिनकी परम्परा तथा बाल्यकाल का सहवास अच्छा नहीं होता है । इस प्रकार के बालकों को उसी समय दृढ़तापूर्वक रोकने की आवश्यकता होती है जब कि वे सीमा का उल्लंघन करने को उद्यत होते हैं । ऐसी अवस्था में यदि अन्य साधनों से सफलता प्राप्त न होवे तो दण्ड का भी प्रयोग किया जा सकता है जिससे कि बालक की कुप्रवृत्तियों का दमन होकर उसमें संयम का भाव उत्पन्न हो सके ।

(३) बालकों को उन गुणों, नियमों, आदर्शों तथा कर्तव्यों से परिचित कर देना चाहिए जिनके आधार पर उनके चरित्र का निर्माण करना है, जिससे उनको यह भली भाँति विदित हो जावे कि कौन—सी बातें उनके लिए हितकर हैं, कौन—सी अहितकर, कौन—सी बातें उचित हैं और कौन—सी अनुचित तथा उनको किस आदर्श के अनुसार कार्य करना है । शिक्षाप्रद नाटकों, रोचक कथाओं, उत्तम—उत्तम कविताओं, आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों से बालक के आचरण सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि तथा पुष्टि करें । बालकों को सुन्दर—सुन्दर कविताएँ, गीत, पद तथा श्लोक भी कण्ठाग्र करा देने चाहिए क्योंकि इनके द्वारा उचित निर्णयों पर पहुँचने और भिन्न—भिन्न परिस्थितियों में उचित रीति से व्यवहार करने में बहुत सहायता मिलती है ।

(४) बालकों को निषेधात्मक कार्य की अपेक्षा विधेयात्मक कार्यों का स्मरण दिलाना अधिक श्रेयस्कर है । यदि बालक को किसी कार्य को करने का निषेध किया जाता है तो उस कार्य को करने के लिए वह अधिक

लालायित हो जाता है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल शाब्दिक रीति से अच्छी आदतों का बोध देकर ही शिक्षक तथा माता–पिता को सन्तुष्ट न होना चाहिए । उनके मन में उन आदतों के प्रति श्रद्धा तथा उनको अपने जीवन में चरितार्थ करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न की जानी चाहिए । इस प्रकार की दृढ़ इच्छा उत्पन्न हो जाने पर भिन्न–भिन्न गुणों कर्तव्यों तथा सिद्धान्तों के संबंध में बालकों के मन में स्थायीभाव (सेण्टीमेन्ट्स) उत्पन्न हो जाते हैं । इस भाव के उत्पन्न हो जाने से वे उन कार्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हैं ।

(५) ऐसे भावों को बालकों के मन में अवश्य उत्पन्न करना चाहिए जिन पर उसके समाज में विशेष महत्त्व दिया जाता है । इसके साथ–साथ कुछ ऐसे गुणों के प्रति भी उसके मन में स्थायीभाव उत्पन्न कर देना आंवश्यक है जिनका होना मनुष्यता का सूचक है और सभ्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए वांछनीय है । जैसे–आत्म–सम्मान, सभ्यता, ईमानदारी, स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, साहस, निर्भीकता, कर्तव्यपालन, संयम, नियमपालन आदि । इसमें सबसे आवश्यक आत्म–सम्मान का स्थायीभाव है । बालकों के चरित्र गठन में इससे सबसे अधिक सहायता मिलती है । जिस बालक में यह भाव उत्पन्न हो जाता है, वह कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकता क्योंकि इस भाँति के व्यवहार से उसके आत्म–सम्मान में धब्बा लग जाने, उसके यश के कलंकित हो जाने और अन्य लोगों की दृष्टि में उसके गिर जाने की उसको सदा आशंका रहती है । इस भाव का विकास शनैः–शनैः होता है । इसको पूर्ण रूप से जागृत करने के लिए बालक पर विश्वास करना चाहिए और उसके उत्तरदायित्व के भाव को जागृत करना चाहिए ।

(६) किसी अनुचित कार्य को करने पर उसे भला–बुरा नहीं कहना चाहिए, बल्कि ऐसा कह कर कि "इस प्रकार का व्यवहार तुम्हारे योग्य नहीं है । यह कार्य तुम्हें शोभा नहीं देता । तुमसे कदापी ऐसी आशा न थी, इत्यादि.......।" उसके आत्म–सम्मान के भाव को जागृत करना चाहिए जिससे भविष्य में वह कोई भी कार्य अनुचित ढंग से न करे । ऐसे अवसर पर भला–बुरा कहने से बालक का उत्साह सदा के लिए भंग हो जाता है और दिन प्रतिदिन उसकी अवनति होने लगती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुन्दर स्थायी भावों का हमारे जीवन में

कितना महत्व है । जिन लोगों में बुद्धि की वृद्धि अधिक हो जाती है किन्तु जिनके मन में सुन्दर, स्थायी भाव नहीं बन पाते वे एक ओर बुद्धिमान होते हुए भी दूसरी ओर दुराचारी हो सकते हैं । उनका विवेक उन्हें दुराचार से रोकने में समर्थ नहीं होता है । कितने ही बड़े-बड़े बुद्धिमान दुराचरण करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु बहुत से अपढ़ लोग भी सदाचारी होते हैं क्योंकि अपढ़ होते हुए भी उन में सुन्दर स्थाई भाव होते हैं । अतः सदाचार के लिए सुन्दर स्थायी भावों का होना आवश्यक है । किसी आदर्श के प्रति स्थायी भाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि बालकों के मन में उसका स्पष्ट चित्र खिंच गया हो तथा उसके सम्बन्ध में उचित अन्तःक्षोभ का संगठन कर दिया गया हो । इसके लिए अभीष्ट गुणों तथा आदर्शों की महत्ता प्रभावशाली शब्दों में प्रकट करनी चाहिए तथा उसके विपरीत गुणों पर घृणा दर्शानी चाहिए । सद्गुणों से सम्बन्ध रखने वाले कार्य भी बालकों से बार-बार कराने चाहिए । चरित्र सुधार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि निरन्तर अभ्यास द्वारा बालकों में सद्गुणों का बीजारोपण किया जाय ।

चरित्र गठन के लिए बालकों में दृढ़ संकल्प शक्ति का होना भी आवश्यक है जिससे कि विघ्न वाधाओं तथा शारीरिक कष्टों का सामना करते हुए अपने निर्णयों को कार्य रूप में परिणत कर सकें । इस दृढ़ता को उत्पन्न करना भी बालक के माता-पिता एवं गुरुजनों का आवश्यक कर्तव्य है ।

बालकों के साथ व्यवहार

बालकों के चरित्र निर्माण के विषय में एक खास बात यह है कि हम उसे सदैव निष्क्रिय और पराश्रित बनाये रखने का प्रयत्न न करें । यह सच है कि बालक मनुष्य के लिए परम आनन्द का साधन होता है । जिसके घर में बालक नहीं, उसके घर में आनन्द नहीं । आनन्द का ऐसा यथेष्ट उपयोग करने के लिए मनुष्य आकाश-पाताल एक कर देता है । हमारे समाज में भी बाँझपन अपशकुन और अभाग्य का कारण माना जाता है । बाँझपन का कलंक टालने के लिए स्त्री-पुरुष अपने वश भर कोई बात उठा नहीं रखते । घर में पालना बँध जाने से जो आनन्द प्राप्त हो सकता है, उसकी तुलना दूसरे किसी आनन्द से नहीं की जा सकती । यह आनन्द देह और देही दोनों का है । इस परम आनन्द ने ही संसार की सततता को बनाये

रखा है और मनुष्य की शुभ वृत्तियों को हमेशा ऊपर चढ़ाया है—ऊर्ध्वगामी बनाया है । यह मनुष्य के आनन्द का जनक है ।

जब ऐसे आध्यात्मिक आनन्द का देने वाला कोई पात्र परिवार में जन्म लेता है तो वह न केवल अपने माता–पिता के, बल्कि सब किसी के आनन्द का साधन बन जाता है । उसे देख कर सब आनन्द मग्न हो जाते हैं, उसे गोद में लेकर सब कोई तृप्ति का अनुभव करते हैं । उसके कारण सारा परिवार आनन्द से परिप्लावित रहता है । बालक के आनन्द में माता–पिता का सच्चा आनन्द समाया हुआ है । जब बालक का आनन्द लुप्त होता है, तो माता–पिता का आनन्द भी जाता रहता है । बालक समूचे कुटुम्ब के आनन्द का केन्द्र बन जाता है । कुटुम्ब के परिचित लोग भी बालक को देखकर खुश होते हैं और एक प्रकार के गहरे आनन्द का अनुभव करते हैं ।

किन्तु जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, वैसे–वैसे इस आनन्द की कक्षा और इसका प्रवाह बदलता रहता है । सब किसी के आनन्द का कारण बनने वाला धीरे–धीरे सबके आनन्द का स्थूल और स्वार्थी साधन बनने लगता है । माता–पिता और बड़े–बूढ़े समझते नहीं कि बालक का भी अपना आनन्द होता है । जन्म के बाद तुरन्त ही जो बालक अपनी रक्षा और अपने पोषण की अपेक्षा रखता है और अपने ढंग से अपना विकास करने लगता है, वह धीरे–धीरे समझदार और सशक्त भी बनता जाता है । बालक के लिए कामों को करने में माता–पिता को जो आनन्द मिलता है अथवा घर के बड़े–बूढ़ों द्वारा जो काम या आयोजन बच्चों के लिए, बच्चों का पोषण करने की दृष्टि से किये जाते हैं, उनसे उन्हे हमेशा आनन्द मिलता ही है, यह सोचना ठीक नहीं । जब बालक अपने आनन्द में लीन होते हैं, तब माता–पिता और घर के बड़े उनसे यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने किसी व्यवहार या कार्य द्वारा उन्हें आनंद पहुँचायें । बालक के आनन्द से आनन्दित होने वाले बड़े–बूढ़े अब दूसरी दृष्टि से सोचने लगते हैं । उनके मन में यह विचार प्रमुख बनने लगता है कि बालक भी उन्हें आनन्द पहुँचाने का यत्न करें । जब कोई छोटा बालक अपने खेल में डूबा और उसमें पूरा रस ले रहा है, तभी माता–पिता और बड़े–बूढ़े यह चाहते हैं कि बालक अपना खेल छोड़कर उनके पास आये और उनका मनोरंजन करे । जो माता–पिता और बड़े–बूढ़े बच्चे के साथ खेलकर और उसे अपने

मन–बहलाव का साधन बनाकर खुश होना चाहते हैं, वे बच्चे के भय और उसकी अरुचि या उकताहट की परवाह नहीं करते और जब बालक माता–पिता के ऐसे किसी व्यवहार का विरोध करता है तो उन्हें यह पसन्द नहीं आता और बालक की खीझ या चिढ़ की परवाह किये बिना वे अपने आनन्द–उत्सव में मग्न रहते हैं । एक समय था जब बच्चों का और बड़ों का आनन्द अभिन्न था । धीरे–धीरे ऐसा समय भी आता है, जब कभी तो उनका आनन्द अभिन्न होता है और कभी भिन्न भी । यदि ऐसी परिस्थिति में ध्यानपूर्वक और ज्ञानपूर्वक बालक को समझाने की कोशिश न की जाय तो फिर भी एक समय ऐसा आ जाता है, जब बालक के और बड़ों के आनन्द–क्षेम और आनन्द–कार्य बिलकुल ही भिन्न बन जाते हैं और आनन्द विषयक दोनों की व्याख्याएँ बदल जाती हैं ।

हममें से हर एक को यह समझना चाहिए कि छोटा बच्चा एक प्राणवान प्राणी है और उसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है । ज्यों–ज्यों व्यक्तित्व का विकास होता जाता है, त्यों–त्यों वह अपनी प्रतिभा अनेक प्रकार से प्रकट करता जाता है । ऐसे बालक को उच्चकोटि का आनन्द रुचता है और ऐसे आनन्द की प्राप्ति के लिए वह उच्चकोटि के कार्य पसन्द करता है । चूँकि समाज को बालक के चित्त की धाराओं का कोई व्यवस्थित ज्ञान नहीं होता, इसलिए बालक के प्रति प्रायः सभी बड़े उसके बारे में गलत ख्याल बना लेते हैं और यों बालक के साथ अन्याय करते हैं । जिस तरह बड़ी उम्र के लोगों को आनन्द रुचता है और अपनी रुचि का आनन्ददायी काम अच्छा लगता है, उसी प्रकार बालक भी आनन्द–प्रिय है और उसे भी रुचिकर व आनन्द–प्रेरित काम अच्छे लगते हैं । चूँकि हम इस सचाई की तरफ ध्यान नहीं देते, इसलिए अक्सर बच्चों के आनन्द–विनोद में और उनकी रुचि के कामों में बड़ेपन के बल पर बाधा डाला करते हैं । जब बालक खेलना–कूदना चाहता है, तो हम उसे चुपचाप बैठने को कहते हैं । जब बालक कुछ करना–धरना चाहता है तो हम उसके उत्साह पर ठण्डा पानी डाल देते हैं । इस प्रकार बड़े–बूढ़े बालकों को रुचिकर लगने वाले हर तरह के आनन्ददायक कार्यों का जाने–अनजाने विरोध करने लगते हैं । बालक समझ नहीं पाते कि क्यों घर के बड़े–बूढ़े उनके आनन्द में बाधक बनते हैं । फलतः वे अपनी शक्ति के अनुसार

अपना विरोध प्रदर्शित करते रहते हैं । दुर्भाग्यवश घर के बड़े इस विरोध का उल्टा अर्थ लेते हैं और अपने ढंग से जीने की कोशिश करने वाले को शरारती और जिद्दी समझकर उसके साथ दूसरी तरह का बर्ताव करने लगते हैं । यों बच्चों और बड़ों के बीच ऐसी गलतफहमियाँ जिस प्रमाण में बढ़ती जाती हैं, उसी प्रमाण में बालक का आनन्द लुटता जाता है और परिवार के आनन्द में कमी होती जाती है । फलतः माता-पिता को, समूचे परिवार को आनन्द प्रदान करने वाला बालक अप्रिय लगने लगता है और सब का आपसी आनंद दुःख और कलह में बदल जाता है । यह सब इस लिए होता है कि माँ-बाप और घर के बड़े-बूढ़ों को बालक के बारे में सही ज्ञान नहीं होता । यदि हम यह समझ जाँय कि बालक के आनन्द में सारी दुनियाँ का आनन्द है और यह समझ कर बालक को आनन्द मग्न रहने दें तथा उसके आनन्द से स्वयं आनन्दी बनें, तो आज की दुखी-दुनियाँ की काया पलट हो जाय और वह सुखी बन जाय ।

बच्चों को भी विकसित होने दीजिए

दुनियाँ के सभी देशों में बालक की महिमा गायी गई है । आज भी गायी जाती है । बालक राष्ट्र की अनमोल निधि है, राष्ट्र की नींव में बालक बैठा है । जो राष्ट्र अपने बालकों की सही-सही सार-सँभाल रखता है, उसे अपने जीवन में कभी पछताना नहीं पड़ता क्योंकि आज का बालक ही कल का नागरिक बनता है और राष्ट्र की बागडोर सम्भालता है । जैसा बालक होगा, वैसा ही राष्ट्र बनेगा । दुनियाँ में सर्वत्र यही हो रहा है । हिन्दुस्तान में भी आज हम इसी सत्य के दर्शन कर रहे हैं ।

हमने अपने देश में अपने बालकों की कम से कम चिन्ता की है । अपने विकास के लिए कम से कम पुरुषार्थ किया है । उनके सर्वांगीण विकास के साधनों को जुटाने की तरफ हमारा ध्यान नहीं के बराबर ही गया है । हमने अपने घरों में, विद्यालयों में, समाज में और राज दरबार में, ऐसा कोई वातावरण भी नहीं बनाया कि जिसके बीच जीकर हमारा बालक सहज भाव से सुसंस्कृत और सुविकसित बन सके । विकृति के अनेक क्षेत्र हमने अपने बीच बढ़ाकर और फैलाकर रक्खे हैं । संस्कृति के सुन्दर केन्द्रों का व्यापक विकास करने की तरफ हमारा ध्यान आग्रह के साथ जाना चाहिए,

पर जा नहीं रहा है । इसी कारण आज हमारे बालकों का जीवन चारों तरफ से रुँधा पड़ा है और उन्हें ऊपर उठने के इने-गिने अवसर ही मिल रहे हैं । आज हमारे समाज में बालक जितने दलित और उत्पीड़ित हैं, उतने और कोई शायद नहीं हैं । पर हमें अपनी इस स्थिति का न तो पूरा भान है और न इससे ऊपर उठने की चिन्ता ही है । आज यही हमारे समाज के विचारशील लोगों की सबसे बड़ी चिन्ता का विषय हो, तो इसमें आश्चर्य नहीं ।

जिन घरों में बालक खा-पीकर और पहन-ओढ़कर सुखी हैं, वहाँ भी वह एक-दूसरी दृष्टि से भूखा, प्यासा और बेआसरा पड़ा हुआ है, क्योंकि मनुष्य का जीवन पशु के जीवन से भिन्न है । मनुष्य भाव का भूखा होता है । मनुष्य स्वाभिमान को प्राणों से भी अधिक मूल्यवान समझने वाला प्राणी है । मनुष्य अपनों से और गैरों से भी आदर, सत्कार, स्नेह और सराहना की चाह रखता है । मनुष्य स्वयं अपने हाथों कुछ करने करने की इच्छा रखता है और करके सुखी होता है । मनुष्य को पराधीनता प्यारी नहीं लगती । मनुष्य अपने बलबूते जीकर अधिक शक्तिशाली बन सकता है, बनना चाहता है । उसे बन्धन पसन्द नहीं होते, वह खुला और स्वतंत्र जीवन बिताने का इच्छुक होता है । दूसरों के बन्धन में बँधने की अपेक्षा अपनी इच्छा से अपनाये हुए बन्धन उसको अधिक लाभकर होते हैं और उनके द्वारा वह अपनी सच्ची उन्नति और मानवता की सही उपासना करता है । यह स्वस्थ और संस्कारी मनुष्य का अपना वैभव है ।

आज हमारा बालक घरों में, मदरसों में और समाज के बीच इस वैभव से वंचित है । जैसे-तैसे जी रहा है । हमने उसके जीवन का कोई स्वस्थ और मनोवैज्ञानिक क्रम अभी निश्चित नहीं किया है । वह भगवान का भेजा हमारे बीच आता है और भगवान के भरोसे ही जीने व बढ़ने लगता है । उसके सम्मान का हमारा ज्ञान तो बहुत ही अल्प और अपर्याप्त है । हम न उसके शरीर की आवश्यकताओं को ठीक से जानते हैं न उसके मन और मस्तिष्क की आवश्यकताओं की सही-सही जानकारी रखते हैं, फिर हमें उसकी आत्मा की भूख का तो भान ही क्यों होने लगा । अमीर से अमीर और गरीब से गरीब घरों में जीने और पलने वाले हमारे बालकों का यह घोर दारिद्र्य हमारी वर्तमान अवनति के और लड़खड़ाती चाल से बढ़ने वाली प्रगति के लिए जिम्मेदार है ।

जन्म से सात साल तक की उम्र के बच्चों के सर्वतोमुखी विकास के लिए हम व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से बहुत ही कम चिन्ता करते हैं। बच्चों के जीवन का अत्यन्त कीमती समय हमारे इस घोरतम प्रमाद के कारण व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। मनेविज्ञान के ज्ञाता और शिक्षा शास्त्र के विशेषज्ञों का कथन है कि सात साल से पहले की उमर ही बच्चों के जीवन का सच्चा और सही नियमन और निर्माण करने वाली उमर होती है। यदि इस उमर में पूरी सतर्कता से काम लेकर बालकों के विकास की पर्याप्त चेष्टा न की गई तो बाद में उन पर किया जाने वाला सारा खर्च और परिश्रम बेकार हो जाता है। यह एक ऐसी सचाई है जिस पर दो रायें हो नहीं सकतीं।

बच्चों की शक्तियों का विकास कैसे करें ?

बाल शिक्षण का मनोवैज्ञानिक उद्देश्य यह है कि बच्चों को संसार की कर्मस्थली में आने के लिए तैयार किया जाय। संसार कठोर कार्य–क्षेत्र से भरा हुआ है। पग–पग पर हमें कष्ट संघर्षों का सामना करना पड़ता है। बच्चे के मन में भी क्रमशः कार्यक्षेत्र की भावना, जिम्मेदारी और माता–पिता की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के विषय में जानकारी उत्पन्न होनी चाहिए।

आवश्यकता इस बात की है कि आप बच्चों को ऐसी शिक्षा प्रदान करें कि वे आप पर अनावश्यक रूप से निर्भर न रहें, वरन् स्वयं अपने हाथों से निज कार्य सम्पन्न करते चलें। प्रायः देखा जाता है कि बच्चे जरा–जरा–सी बात के लिए माता–पिता, भाई–बहिन अथवा नौकरों के ऊपर मुँहताज होते हैं, स्वयं कुछ नहीं कर पाते। माता–पिता को ही उनके दैनिक कार्य जैसे स्नान कराना, स्नान के पश्चात् कपड़े धोना, बिस्तर लगाना, भोजन में सहायता करना, बाल ठीक करना इत्यादि अनेक छोटे–बड़े कार्य करने पड़ते हैं। बड़े घरों में तो बालक एक गिलास जल भी स्वयं अपने हाथ से लेकर नहीं पी सकते, अपने जूतों पर पॉलिश या वस्त्रों को ब्रुश से साफ नहीं कर सकते, यदि घर में झाड़ू, कमरे की सफाई अथवा भोजन बनाने का कार्य पड़ जाय, तो वे विफल होते हैं।

चतुर माता–पिता को प्रारम्भ से ही इन कमजोरियों को दूर करने में सतर्क रहना चाहिए। बच्चों को स्वयं काम करने की आदत डालकर आप उनमें आत्म विश्वास और स्वावलम्बन उत्पन्न करते हैं, संसार के कर्मक्षेत्र के लिए उन्हें मजबूत बनाते हैं। स्वयं नकर बच्चों को इस युक्ति से प्रोत्साहित

कीजिए कि उन्हें अपने कार्य करने में आनन्द आये । वे खुद स्नान करें, वस्त्रों को सम्हालें, कपड़े धोएँ, तौलिया स्वच्छ रखें, कंघी स्वयं करें, दाँत मञ्ज़न करना न भूलें, बिस्तर स्वयं बिछाएँ स्वयं उठाएँ, स्कूल से आकर जूते और वस्त्र बदल डालें, अपनी पुस्तकों-कापियों तथा पठन-पाठन सम्बन्धी अन्य सामग्रियों को यथास्थान सुरक्षित रखें । संक्षेप में, अपने अधिक से अधिक कार्य वे स्वयं करें ।

धीरे-धीरे उत्तरदायित्व का विकास करने के लिए यह भी आवश्यक है कि उनसे घर के मामलों में राय ली जाय । जिम्मेदारी अनुभव करने वाला बच्चा न चोरी करेगा, न अनुचित पैसों की लम्बी-चौड़ी माँगें ही पेश करेंगे । बच्चे स्वयं चाहते हैं कि परिवार के मामलों में दिलचस्पी लें किन्तु हम स्वेच्छाचार से उनकी बात पर ध्यान नहीं देते ।

बच्चे को यह अनुभव करने दीजिए कि घर में उसका महत्वपूर्ण स्थान है । बच्चे का गर्व फुला दीजिए । उसे इस बात के गर्व का आनन्द अनुभव करने दीजिए कि परिवार में उसका सम्मान होता है । गर्व की रक्षा करने वाले माता-पिता का बच्चा सदैव परिवार के सम्मान की रक्षा करता है । इससे बच्चे का आत्म-विश्वास बढ़ता है । बच्चों को अपने हाथ से अपने उद्योग और परिश्रम से चीजें, खिलौने, तस्वीरें बनाने, कढ़ाई-बुनाई या सिलाई का कार्य करने में विशेष आनन्द का अनुभव होता है । चतुर माता-पिता को बच्चों की इस स्वाभाविक रचनाशीलता, कार्य करने की प्रवृत्ति, सृजनात्मक शक्ति को जागृत करना चाहिए ।

बच्चों के स्वास्थ्य की समस्याएँ

बच्चों की उन्नति का रहस्य उत्तम स्वास्थ्य ही है । उत्तम स्वास्थ्य की नींव बचपन से ही रखी जाती है । स्वास्थ्य से हमारा अभिप्राय यह है कि बच्चे की पाचन क्रिया दुरुस्त हो तथा मलोत्सर्ग की प्रणालियाँ अच्छी तरह निज कार्य करती रहें । उनके शरीर में स्फूर्ति रहे, कार्य में मन लगे, उनके हृदय में आशा, उत्साह तथा मुख पर मधुर मुस्कान रहे, आत्मा स्वच्छंद हो, मस्तिष्क तथा ज्ञानेन्द्रियाँ पवित्र और विकसित रहें ।

स्वास्थ्य का सर्वप्रथम नियम है कि बच्चों को जल्दी सोने तथा जल्दी जागने की आदत डाली जाय । यह कठिन है किन्तु धीरे-धीरे अभ्यास से यह आ सकती है । भारत जैसे देश का प्रातःकालीन समय बौद्धिक विकास,

मौलिक अध्ययन एवं चिन्तन मनन के लिए बहुत उत्तम है ।

दाँतों की सफाई दूसरा प्रधान कार्य है । टूथ पाउडर या दाँतुन की धीरे–धीरे आदत डालनी चाहिए । तत्पश्चात् तेल की मालिश के साथ स्नान करना चाहिए । शरीर त्वचा का रंग साफ हो जाता है तथा शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है । नास्ते में दूध, मीठे फल आदि उत्तम हैं । यथा सम्भव भोजन पौष्टिक दिया जाय, चाय की आदत न डाली जाय । बचपन में ही सिगरेट की गन्दी आदत पड़ती है जिसकी ओर से सावधान रहें । शरीर ओर मस्तिष्क की पूर्ण स्वच्छता, रहने के स्थान और उसके इर्द–गिर्द के वायु मण्डल की स्वच्छता, सुखाद्य और पौष्टिक भोजन, फल, हरी तरकारियाँ स्वास्थ्य बनाने में सहायक होते हैं ।

व्यायाम की आदत प्रारम्भ से ही डालनी चाहिए अन्यथा बच्चों में आलस्य, मोटापन, निकम्मापन, झींकना, दुःखी रहना इत्यादि दुर्गुण आ जाते हैं । व्यायाम के अनेक उपाय हो सकते हैं । जैसे–खेल–कूद, भागना, तैरना, पेड़ों पर चढ़ना, कुस्ती, अंग्रेजी डम्बल या भारतीय यौगिक व्यायाम । उन्हें गहरी साँस लेना सिखलाइये । वे नित्य समय पर स्नान करें, मालिस किया करें । ऐसा प्रयत्न करें कि व्यायाम उनके लिए बोझ न बन जाय वरन् वे उसे मनोयोग पूर्वक करें । श्वाँस सम्बन्धी कसरतें अति उत्तम होती हैं । वलपूर्वक, श्वाँस–प्रश्वाँस की क्रिया की अपेक्षा तेज चलने, धीरे–धीरे दौड़ने से हृदय और फेंफड़ों को बहुत लाभ पहुँचता है ।

बच्चों को समय–समय पर नये–नये स्थान, बाग, सरिता के तट पर या स्वस्थ स्थानों पर टहलने के लिए ले जाया कीजिए । शुद्ध वायु में रखने से उनकी बाढ़ ठीक रहेगी । स्फूर्ति से टहलना चाहिए । छुट्टियों में घर से बाहर ले जाने से बच्चों की परिस्थिति एवं वातावरण में परिवर्तन हो जाता है ।

यदि किसी व्यायामशाला में जाने की सुविधा हो तो मालिश करना आसानी से आ सकता है । मालिश एक उत्तम व्यायाम है । त्वचा की क्रिया को ठीक रखने के लिए शुष्क घर्षण या स्नान के समय गीले वस्त्र से बदन रगड़ना त्वचा को स्वस्थ रखता है । सुविधानुसार मालिश कराते रहें ।

बच्चे स्वभावतः कुछ न कुछ करते रहते हैं । वे निश्चेष्ट नहीं बैठ सकते । इसलिए आपकी चतुरता और कला इस बात में है कि उनके लिए कुछ ऐसे मनोरंजक कार्य खोज निकालें, जिसमें उनकी शक्तियाँ लग सकें और

कुछ उपयोगी कार्य भी हो सके । वे कार्य के भूत होते हैं । उनकी इस उत्पादक शक्ति को कार्य में लाने में ही भलाई है । अधिक कार्य करने से उनकी गुप्त उत्पादक शक्तियों का विकास होता है ।

बच्चे को जीवन–सम्पर्क में लाइये

आपका बच्चा आपके जीवन का बड़ा सहायक और दुःख बँटाने वाला बन सकता है, यदि वह सुशील है और उत्तरदायित्व को समझता है । उसे धीरे–धीरे जीवन, समाज, अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति का भान करा दीजिए । अपनी शिक्षा प्रेम से सने हुए वाक्यों में दीजिए ।

ज्यों–ज्यों वह बड़ा बनता है, त्यों–त्यों उस पर से अपना अधिकार हटाकर मैत्री भाव धारण कीजिए, अर्थात् उसे अपना मित्र मानिए, मातहत नहीं । मित्र का सम्बन्ध रखने से बालक का आत्म–विश्वास निरन्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होता रहता है । उसे स्वतंत्र रूप से विकसित होने का अवसर प्राप्त होगा । प्रेम का ही नियंत्रण सर्वश्रेष्ठ और स्थायी हो सकता है । बच्चे को स्वाधीन रख कर ही हम उसे जीवन और संसार के उत्तरदायित्व की शिक्षा प्रदान कर सकते हैं । जो निरन्तर छोटी–बड़ी बातों में माता–पिता के पथ–प्रदर्शन के मुहताज बने रहते हैं, वे अपनी मौलिकता, नीर–क्षीर विवेक दृष्टि, स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने की क्षमता, नेतृत्व इत्यादि सद्गुणों का विकास नहीं कर पाते हैं । धीरे–धीरे अपना हाथ खींचकर जीवन, समाज और सांसारिक उत्तरदायित्व का बोझ बालक पर डालना चाहिए ।

बालक जब किशोरावस्था को पार करता हुआ युवावस्था में प्रवेश करता है तो उसके नवीन रक्त में खूब उत्साह होता है, वह कुछ करना चाहता है । बड़ी–बड़ी इच्छाएँ और योजनाएँ उसके मन में भरी होती हैं, परन्तु अनुभव की कमी के कारण बहुधा उचित मार्ग, उचित साधन एवं उचित कार्यक्रम नहीं अपना पाता । फलस्वरूप उसे कई बार असफलता और निराशा का मुख देखना पड़ता है, जिससे उसकी हिम्मत टूट जाती है और भविष्य के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य करने लायक साहस उसमें नहीं रह जाता ।

इस परिस्थिति के आने देने से पूर्व अभिभावकों का कर्तव्य है कि बच्चों की गतिविधि और विचारधारा का बारीकी से निरीक्षण करते रहें और उन्हें

समयानुसार ऐसी सलाह देते रहें कि वे गलत कदम उठाने से बचे रहें । बहुधा अति उत्साह के कारण लड़के अपनी इच्छा को प्रधानता देकर अभिभावकों की सलाह पर कम ध्यान देते देखे गये हैं । ऐसा होने पर भी बुद्धिमान अभिभावकों का कर्तव्य है कि रुष्ट हो बैठने या असहयोग करने की नीति न अपनायें, वरन् उसकी भूल को मानसिक दुर्बलता समझकर क्षमा की भावना से काम लें और उन्हें अनिष्ट से बचाने एवं उचित मार्ग बताने के अपने कर्तव्य को सदैव तत्परतापूर्वक पालन करते रहें ।

बालकों को पवित्र वातावरण में रखिए

बालकों के जीवन को सफल बनाने और उनके मानसिक विकास को उपयुक्त रीति से अग्रसर होने के लिए पवित्र वातावरण की बड़ी आवश्यकता है । यह एक अटल सत्य सिद्धान्त है कि जो मनुष्य किसी अन्य मनुष्य के साथ रहेगा तो उसकी भावनाओं का प्रभाव भी उस पर अवश्य पड़ेगा । अगर उन दोनों में से एक कोमल प्रकृति का हुआ तो वह दूसरे सबल व्यक्ति की भली–बुरी बातों से अवश्य प्रभावित होगा और उनको ग्रहण भी कर लेगा । इस दृष्टि से हम यदि दूसरों के प्रति सद्भावना रखते हैं तो अप्रत्यक्ष रूप में उनका कल्याण ही होता है । इसके विपरीत अगर दुर्भावना रखते हैं और प्रकट करते हैं तो उससे अन्य लोगों की क्षति होती है । बालक का मन बड़ा ही निर्मल होता है । उसके मन में दृढ़ता नहीं होती । अतएव जब किसी व्यक्ति के प्रबल विचार उसके अचेतन मन में घुस जाते हैं तो वे उसकी बड़ी क्षति कर डालते हैं । यदि कोई व्यक्ति अपने शत्रु के विनाश के विचार मन में ला रहा है और इसी बीच उसका बालक उसके समीप आये तो अज्ञात रूप से उसके वे अभद्र विचार बालक के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं । इस कारण बालक का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है अथवा उसकी मृत्यु ही हो जाती है ।

हमारी साधारण धारणा है कि बालक को बिना सिखाये कुछ भी नहीं आता । बालक के जीवन पर उन्हीं बातों का प्रभाव पड़ता है जिन्हें हम जानबूझ कर उसके मन में डालते हैं, पर हमारी यह धारणा भ्रमात्मक है । हम बालक के जीवन पर जितना जान–बूझकर प्रभाव डालते हैं, उससे कहीं अधिक प्रभाव उसके जीवन पर अनजाने डालते हैं । हम जो भी विचार मन में लाते हैं, उससे बालक प्रभावित होता है । यदि हमारे सब समय के विचार

भले हैं, यदि हम सब समय दूसरे के ही कल्याण का चिन्तन करते हैं तो बालकों का चरित्र स्वतः ही सुन्दर बन जाता है । प्रेम ही सब सद्‌गुणों का स्रोत मूल है और घृणा सब दुर्गुणों का । हमारी विश्व-प्रेम की भावनाएँ बालकों के हृदय में स्थान कर लेती हैं और वे उसे अपने आप सदाचारी बना देती हैं ।

जो व्यक्ति अपनी सन्तान को सुयोग्य बनाना चाहता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह कठोर परिश्रम से पैसा कमाकर उनका लालन-पालन करे । दूसरे के धन की आशा न करे । अपने बालकों को दूसरों के सहारे कभी न छोड़े । यदि कोई गरीब व्यक्ति अपने बालक को प्रेम के साथ पालता है और यदि ऐसे बालक को वह किसी कारणवश किसी धनी के घर थोड़े दिन के लिए रख दे, जहाँ बालक को सब प्रकार की सुख-सामग्री मिलती हैं, तो भी वह बालक वहाँ रहना पसन्द नहीं करेगा । बालक प्रेम का भूखा होता है । प्रेम की भूख भोजन की भूख से भी प्रबल होती है । धनी घर में बालक की केवल भौतिक भूख तृप्त हो सकती है । यही कारण है कि वह ऐसे घर को जेलखाने के समान मानता है । ऐसे घर में रहने पर पहले तो वह वहाँ से भागने की चेष्टा करता है और जब वह इसमें समर्थ नहीं होता तो रोग का आश्रय लेता है । जो बालक इस प्रकार के वातावरण में रहकर भी जी जाते हैं, वह किसी न किसी प्रकार के बड़े चरित्र-दोष को पकड़ लेते हैं । देखा गया है कि दत्तक पुत्र, यदि रोगी, क्रूरकर्मी, व्यभिचारी न हुआ तो वह निस्संतान अवश्य होता है । इस प्रकार की घटना का प्रधान कारण बालक का दूषित मानसिक वातावरण में पाला जाना ही है ।

सन्तान हीनता दुर्भाग्य की बात नहीं

संतान की इच्छा संसार में सर्वत्र देखने में आती है,उसके लिए मनुष्य तरह-तरह के प्रयत्न भी करते हैं, पर तो भी अनेक मनुष्य निस्संतान रह जाते हैं और वे अपने को अभागा समझकर बड़े दुःखी तथा संतप्त रहते हैं । यह एक बड़ी भूल है । खास कर हमारे भारतवर्ष में तो संतान न होने को इतना बड़ा दोष मान लिया है कि उससे बड़ी-बड़ी हानियाँ होती हैं । संतान प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्ति अनुचित उपायों का भी सहारा लेते हैं और तब

भी सफलता न हो तो अन्य के बालक को दत्तक लेकर मन की साध पूरी करते हैं ।

संतान से जो इच्छा किन्हीं बिरलों की ही पूर्ण होती हैं, वे गौरव की, कमाई खिलाने की, सेवा मिलने की हैं । पर आज के समय में ऐसे सपूतों के दर्शन दुर्लभ हैं । बुड्ढे माता-पिता को एक भार समझा जाता है, उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा की जाती है । जबान बेटा घर का मालिक होता है । बुड्ढे के हाथ में कोई शक्ति नहीं रहती, वह पराश्रित हो जाता है, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कमाऊ बेटे के मुँह की ओर ताकता है, उसकी टेढ़ी भवों को देखकर सहम जाता है । चौपाल की चर्चा में बुड्ढे को ही बाप कहा जाता है, पर व्यावहारिक रूप में बेटा बाप बन जाता है और बाप को बेटे की तरह रहना पड़ता है । जवानी के नशे में अक्सर आज के बेटे बाप का अपमान तक करने में नहीं चूकते । जो बड़े मनसूबे बाप बाँधा करता था, बेटे से जिस व्यवहार की आशायें किया करता था, समय आने पर वह बालू का महल बिस्मार हुआ दिखाई देता है । किन्हीं बिरलों की ही यह इच्छा पूर्ण होती है ।

कुछ कारण ऐसे हैं जिन्हे केवल भ्रम कहा जा सकता है, जैसे यह ख्याल करना कि बेटे से हमारा नाम चलेगा । इन पंक्तियों के पाठकों से हम पूछते हैं कि आप कृपा कर अपने पूर्वजों के पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से नाम बताइये ? तीन, चार, पाँच पीढ़ी से अधिक ऊपर की पीढ़ी के पूर्वजों के नाम शायद ही किसी को याद होंगे । जब अपने ही पोते, पर पोतों को नाम नहीं याद रहा तो दुनियाँ में तो संतान द्वारा चलेगा ही कैसे ? यह दुनियाँ ब्लैक बोर्ड की तरह है जिस पर बार-बार अक्षर लिखे और मिटाये जाते हैं । खेत मे बार-बार बीज बोये जाते हैं ओर बार-बार फसल काटी जाती है । हर बरसात में असंख्य बूँदें पानी की बरसती हैं और अपने रास्ते चली जाती हैं । कौन किसे याद रखता है ? दुनियाँ की याददाश्त इतनी फालतू नहीं है कि वह गये-गुजरे आदमियों को याद रखे, उनके नाम चलाये । सृष्टि के आदि से आज तक असंख्यों मनुष्य हुए और मर गये । उनकी सन्तानें मौजूद हैं, पर नाम याद रखने का किसी को अवकाश नहीं । यह सब देखते हुए भी जो यह सोचते हैं कि संतान से नाम चलेगा, वह भारी भ्रम में हैं ।

इसी प्रकार यह भी भ्रम है कि मरने के बाद भी सन्तान खाना-पीना

परलोक में पहुँचाया करेगी । हर आत्मा स्वतंत्र है । उसे अपने कर्म का ही फल मिलता है । बेटे की रोटी से परलोकवासी आत्मा का पेट नहीं भरता । परमात्मा इतना कंगाल नहीं है कि उसके घर में रोटी का अकाल पड़ जाय, बेटे के पिण्डोदक बिना बाप को भूखा–प्यासा रहना पड़े । सद्गति अपने कर्मों से होती है । इसके लिए बेटे का आसरा ताकना निरर्थक है ।

मेरे पीछे मेरा उत्तराधिकारी कौन होगा ? यह बात भी भला कोई चिन्ता करने की है । लेने के लिए तो हर कोई हाथ पसारे खड़ा है । फिर जिनके लिए छोड़ा जायगा वे उसका सदुपयोग ही करेंगे इसका कोई निश्चय नहीं । हम देखते हैं कि कितने ही लड़के बाप के माल को लूट का माल समझकर ऐसी बेदर्दी से फूँकते हैं कि देखने वालों को तरस आता है ।

संतान को आदर्श बनाइये

इन सब बातों का सारांश यही है कि चाहे आप संतानोत्पत्ति के लिए प्रयत्न करें या न करें, पर यदि संतान होती है, तो उसे आदर्श बनाना आपका कर्तव्य है । कुत्ते, बिल्लियों की तरह बहुत से बच्चे पैदा करके उनको इधर–उधर मारे–मारे फिरने के लिए छोड़ देना कोई प्रशंसा की बात नहीं है । ऐसी संतान से हमारा और पूर्वजों का उद्धार तो क्या उल्टा वे हमको नर्क में ढकेलने का कारण बनेंगे । इसी बात को समझकर आजकल अनेक विद्वानों ने तो 'संतान निग्रह' का एक आन्दोलन ही चला दिया है जिसका आशय यही है कि मनुष्य को उतनी ही संतानें उत्पन्न करनी चाहिए, जिनका पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा वह भली प्रकार कर सकता है । हम समझते हैं कि कोई भी विचारवान व्यक्ति इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि अगर हम संतान के प्रति अपना कर्तव्य निबाहने में असमर्थ हैं तो इससे अच्छा यही है कि उसे उत्पन्न ही न किया जाय । संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक अबोध शिशु परमात्मा की एक पवित्र धरोहर है, जिसकी उचित प्रकार से रक्षा और विकास करके ही हम अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकते हैं ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

युग परिवर्तन महापुरश्चरण साधना

[illegible] जगत के परिशोधन एवं युग परिवर्तन हेतु दिव्य उपासना। मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव बनाने के लिए सामूहिक महासाधना का नियोजन। यह दिव्य महापुरश्चरण युग निर्माण योजना मिशन की स्वर्ण जयंती गुरुपूर्णिमा २०१३ से पूर्व गायत्री जयंती २०१३ से गायत्री तपोभूमि, मथुरा से आरंभ किया गया है, जो २०२५ तक १२ वर्ष चलता रहेगा। २०२६ में वंदनीया माताजी की जन्म शताब्दी और अखंड दीपक की शताब्दी के विराट आयोजन के साथ इस युग परिवर्तन महापुरश्चरण की पूर्णाहुति संपन्न होगी। इस संकल्प के अंतर्गत गायत्री तपोभूमि, मथुरा में नौ दिवसीय गायत्री अनुष्ठानों की शृंखला अंत तक अनवरत रूप से जारी रहेगी।

हर नगर-गाँव के प्रत्येक मोहल्ले में एक साधना मंडल गठित किया जाए जो १०-१० नए साधकों से लघु अनुष्ठान सामूहिक साधना के साथ संपन्न कराता रहे। स्थान कहीं भी गली-मोहल्ले में किसी के घर अथवा मंदिर-धर्मशाला रखा जा सकता है। समय प्रात:-दोपहर-सायं रखा जा सकता है। अनुष्ठान प्रारंभ करने से पहले संकल्प में एक सुपाड़ी पूर्णाहुति के लिए देव मंच पर समर्पित की जाए। अनुष्ठान की समाप्ति पर जब भी कोई परिजन मथुरा आएँ, उनके साथ सुपाड़ी भेज दें। जिन साधकों की सुपाड़ी भेजी जाए उनके पूरे नाम पते की सूची, फोन नंबर सहित भेजने का कष्ट करें।

युग परिवर्तन महापुरश्चरण पुस्तक माला का एक सेट अनुदान राशि से 120/- रुपये मूल्य का तैयार कराया गया है। प्रत्येक अनुष्ठान करने वाले साधक को इसे अपने घर में स्थापित कराना चाहिए और अनुष्ठान के दौरान एवं बाद में भी इसका स्वाध्याय निरंतर करते रहना चाहिए ताकि गायत्री महाविद्या और महाविज्ञान का तत्त्वज्ञान साधकों को हो सके और वे अनुष्ठान का पूरा लाभ प्राप्त कर सकें।

संपर्क सूत्र : **युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट,**
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३ फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
फैक्स : 2530200, ई-मेल : yugnirman@awgp.org

मिशन की पत्रिकाएँ

(१) अखण्ड ज्योति (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-120.00, आजीवन शुल्क-2400.00 रुपया।

अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-90.00 रुपया

पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-281003

फोन : (0565) 2403940

(२) युग निर्माण योजना (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-60.00, आजीवन शुल्क-1200.00 रुपया।

युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-100.00, आजीवन शुल्क-2100.00 रुपया।

पता : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-3

फोन : (0565) 2530128, 2530399

फैक्स : (0565) 2530200

(३) प्रज्ञा अभियान (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-40.00 रुपया।

वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की दृश्य-श्रव्य जानकारी)

52 अंकों का वार्षिक शुल्क-365.00 रुपया।

पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखंड) फोन : 01334-260602

अनुदान राशि से 40 पुस्तकों के पूरे सेट का
मूल्य : 120/-

GP 24